कहानी

आँखों में झिलमिलाते ख्वाब

रेणु गुप्ता

आज दिवाली है, तमस पर उजास की विजय का पावन पर्व. डॉक्टर सुमथी अपनी डॉक्टर विधवा माँ निवेदिता, यूनिवर्सिटी प्रोफ़ेसर मौसी रंजीता और बचपन के दोस्त साजू के साथ दक्षिण भारत के एक कस्बे की कच्ची बस्ती में वहाँ के गरीब बच्चों और उनके माता-पिता के साथ हर वर्ष की तरह इस साल भी दिवाली मनाने आई है.

वे लोग बस्ती के बच्चों को देने के लिए पटाखे, मिठाई और नयी ड्रेस से भरे गिफ्ट बैग्स भी लाये हैं.

आज उस कच्ची बस्ती में जश्न का माहौल है. सुमथी और साजू से अपने-अपने उपहार ले बस्ती के बच्चों की खुशी का ठिकाना नहीं है.

फ़िज़ा बस्ती के नन्हे-मुन्नों और किशोरों-किशोरियों की खुशनुमा चहक से गुलज़ार है.

सभी बच्चों ने अतिथियों द्वारा लाये गए पटाखे जलाए. कोई फुलझड़ियाँ और अनार जला कर खुश था तो कोई चकरी और सुतली बमों का आनंद ले कर. कोई रॉकेट बम छुड़ाने का मजा ले रहा था तो कोई तेज आवाज वाले बमों का.

जी भर कर आतिशबाजी का लुत्फ़ उठाने के बाद सुमथी, साजू, डॉक्टर निवेदिता और प्रोफ़ेसर रंजीता ने बस्ती के बच्चों और बड़ों के साथ केले के पत्तों पर अपने लाये पकवानों का स्वाद लिया.

ये सब करते-कराते रात के बारह बजने आये थे लेकिन आज किसी की आँखों में नींद नहीं थी.

निवेदिता और रंजीता साजू और सुमथी के साथ अपने होटल लौट कर अपने अपने रूम में सोने चले गए.

रात के दो बजने आये थे लेकिन आज सुमथी की आँखों में नींद न थी. अनायास कब वह अपने वंचित बचपन की कड़वी-कसैली यादों के आगोश में समा गई, उसे तनिक भी भान न हुआ.

वह लगभग दस साल की थी जब उसकी ज़िंदगी का वह भयानक हादसा हुआ था.

उसे आज तक अच्छी तरह से याद है, वह अपने सबसे अच्छे दोस्त साजू और अपनी बस्ती के कई बच्चों के साथ एक पटाखा फैक्ट्री में रॉकेट बम की नलियों में बारूद भर रही थी कि तभी फैक्ट्री में भयानक विस्फोट हुआ था और आग ने देखते-देखते विकराल रूप धारण कर लिया था.

उस आग की चपेट में उसके साथ-साथ साजू और उसके कई दोस्त भी आ गए थे. फैक्ट्री के पिछले हिस्से में लगी आग ने फैक्ट्री में कदम-कदम पर बिखरे बारूद को अपने शिकंजे में ले लिया था जिसकी वज़ह से साजू के हाथ और पैर झुलस गए थे. उसे आग से बचाने के प्रयास में सुमथी के हाथ भी झुलस गए. और आग के शिकार लोगों को आनन-फानन में पास के अस्पताल ले जाया गया था, लेकिन उस दुर्घटना में सुमथी और साजू के माता-पिता चल बसे थे.

सुमथी और साजू अपने-अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे.

अस्पताल की बर्न यूनिट में उन दिनों संतानहीन डॉक्टर निवेदिता की ड्यूटी लगी हुई थी. वो सुमथी और साजू और अन्य जले हुए बच्चों का इलाज कर रही थीं.

अपने-अपने माता-पिता को खोकर सुमथी और साजू बेहाल थे. दिन-रात उनकी आँखों से आंसुओं का सैलाब बहता जिसे देख डॉक्टर निवेदिता और उनकी टीम बेहद चिंतित थी. माता-पिता को खोने का सदमा बहुत भयंकर था. इस सदमे की वज़ह से उनके घाव जल्दी भर नहीं रहे थे. दोनों बच्चों को निरंतर रोता देख निस्संतान निवेदिता का कलेजा मुंह को आ रहा था.

सुमथी और साजू की आँखों में समाया दर्द उसे एक पल को भी चैन से बैठने नहीं दे रहा था. उसकी भूख-प्यास और नींद दोनों बच्चों के संताप को देख कर उड़ गयी थी.

ऐसे ही एक क्षण में निवेदिता ने एक निर्णायक फैसला लिया था. वह सुमथी को विधि-विधान से गोद लेगी. उसके वंचित बचपन में खुशियों के रंग भरेगी.

उसकी सगी तलाकशुदा प्रोफ़ेसर बहन रंजीता ने जब निवेदिता के मुंह से सुमथी को औपचारिक रूप से अडॉप्ट करने की खबर सुनी, अपने अकेलेपन से त्रस्त उसने भी साजू को गोद लेने का निर्णय लिया.

दोनों बहनों की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के चलते एक निश्चित अवधि में दोनों को दोनों बच्चों की कस्टडी मिल गई.

निवेदिता और रंजीता के सूने जीवन दोनों बच्चों की खुशनुमा चहक से गुलज़ार हो उठे.

उधर सुमथी और साजू भी अपने नए घर में पुरसुकून थे. अपने माता-पिता को खोने के दर्द ने निस्संदेह उनके दिल पर गहरे घाव किये थे. लेकिन दोनों माओं के बेशर्त लाड़-प्यार की मृदु छांव में दोनों बच्चे हँसते-खेलते बड़े होने लगे.

दोनों ही बच्चों की उम्र दस वर्ष थी, और उन्होंने दस बरस की उम्र तक पढाई नहीं की थी. इसलिए निवेदिता और रंजीता को दोनों बच्चों की पढाई पर एक्स्ट्रा ध्यान देना पड़ा. दोनों ही दैव योग से बेहद मेधावी थे.

दोनों ही दस बरस की उम्र तक स्कूल नहीं गए थे. अपने माँ बाप के जमाने की मुफलिसी के दौर में स्कूल जाते बच्चों को बड़ी हसरतों से देखा करते. सो जब किस्मत उन्हें धन-धान्य से भरपूर घरों में ले आई तो दोनों ही ठीक-ठाक पढ़ा करते.

जैसे-जैसे दोनों बच्चों की उम्र बढ़ रही थी, शांत स्वभाव की सुमथी तो किताबी कीड़ा साबित हुई लेकिन बेहद चंचल और खिलंदड़े स्वभाव के साजू का मन पढाई में बिलकुल नहीं लगता. उसका मन लगता तो महज़ कंप्यूटर में. कंप्यूटर ऑपरेशन की पेचीदगियां यूँ चुटकियों में सुलझाता कि सब दांतों तले उंगली दबा लेते.

सो कंप्यूटर में उसके महारथ के चलते रंजीता ने उसे कंप्यूटर में हरसंभव कोर्स करवाये जिसके चलते वह बीस-बाईस की आयु तक एक उत्कृष्ट कंप्यूटर एक्सपर्ट बन गया.

रंजीता यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर थी, तो पैसों की कमी न थी. सो उसने साजू को एक शैक्षणिक संस्थान खुलवा दिया.

अपने मन-पसंद फील्ड में साजू बेहद शानदार प्रदर्शन कर रहा था. सुमथी भी डॉक्टर बन डॉक्टर निवेदिता के नर्सिंग होम में कार्य रत थी.

दोनों ही अपने बेनाम रिश्ते को विवाह का नाम देने का मानस बहुत पहले बना चुके थे. वक़्त का पंछी अनवरत अपनी उड़ान भरता गया था.

आज दोनों की मंगनी हो चुकी है.

सुमथी ने नम आँखों से निवेदिता और फिर रंजीता के चरण-स्पर्श करते हुए उनसे कहा, माँ, आपने और रंजीता मौसी ने मेरी और साजू की ज़िंदगी सँवार दी. अगर आप दोनों हमें अडॉप्ट नहीं करतीं, तो हम तो बस्ती के और बच्चों की तरह गुमनामी के अँधेरे में खोए रहते.

साजू की आँखों से बहती अश्रु धारा सुमथी की बात का अनुमोदन कर रही थीं.

तभी सुमथी ने कहा, माँ और मौसी, मैंने और साजू ने एक फैसला किया है. हम दोनों भी आप दोनों की तरह बस्ती के दो बच्चों को अडॉप्ट करेंगे.

बहुत बढ़िया बच्चों, इससे बढ़िया तो कोई बात ही नहीं हो सकती. दोनों निवेदिता और रंजीता मुस्कुराते हुए एक साथ बोल पड़ीं.

सुमथी और साजू एक दुसरे की आँखों में झांकते मुस्कुरा उठे.

दोनों की आँखों में भविष्य के खुशनुमा सपने झिलमिला उठे.

पुस्तक चर्चा

स्त्री मन की पगडंडियों पर खिली बनफूल-सी कविताएँ

मनीष वैद्य

स्त्री मन अथाह-अछोर है, और उसकी थाह पाना असंभव. एक स्त्री जब अपनी बनाई सूनी-उदास पगडंडियों से अकेली गुज़रती है तो वह चलते हुए बीज बिखेरती चलती है, ताकि जब उस पर कोई लौटे तो वह हरी-भरी मिले, उसमें वनफूल खिले रहें. स्त्री की तासीर में दुनिया को सुंदर बनाने का सपना शामिल है.

कवि मन की ऐसी ही किसी अनचिन्ही पगडंडी से गुज़रते हुए रश्मि वैभव गर्ग ने कविताओं के बीज बिखेरे थे, जो अब एक किताब की शक्ल में हमारे सामने पल्लवित-पुष्पित और सौरभित हैं. ये किसी सूनी-उदास पगडंडी से गुज़रते लिखे गए लेकिन इनमें सिर्फ़ अकेली चुप्पी, उजाड़ सन्नाटा या दुखों के बैंगनी फूल ही नहीं है, इससे उलट इनमें जीवन का उत्सव है, उम्मीदों के बीज हैं, प्रकृति का जादू है, संघर्षों के बीच से उठती हँसी है, प्रेम का ठाठे मारता सागर है, स्त्री मन की चाहत की एक भरी-पूरी फेहरिस्त है, मन्त्रमुग्ध कर देने वाला अनसुना राग है, आगत का स्वागत है और संवेदनशील स्त्री मन की सहज जिज्ञासाएँ भी सम्मिलित हैं. रश्मि के नए कविता संग्रह मन की पगडंडियों पर को पढ़ते हुए इन्हें सहज समझा जा सकता है. राजस्थान साहित्य अकादमी ने इसे चयनित कर प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग दिया है.

छूना चाहती हूँ तुम्हें/ और तुम ओझल हो जाते/ बदली में चाँद की तरह/ एकटक देखना चाहती हूँ मैं/ तुम चले जाते हो/ पानी में प्रतिबिम्ब की तरह- शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ हमें उस जादुई लोक में ले जाती हैं, जहाँ क़दम-क़दम पर शब्दों का जादू बिखरा है. पगडंडी के आसपास खिले बनफूलों की झाड़ियों की तरह. इनका अपना ठेठ प्राकृत अनगढ़ सौन्दर्य है, जो पढ़ते हुए अनायास हमें विस्मय से ठिठका देता है. इन कविताओं के भाव-संवेदनाएँ पढ़ते हुए हम लिखने-पढ़ने वालों की पुरखिन महादेवी वर्मा के भाव मेरे जेहन में निरंतर गूँजते रहे-मैं नीर भरी दु:ख की बदली ! उमड़ी कल थी, मिट आज चली..

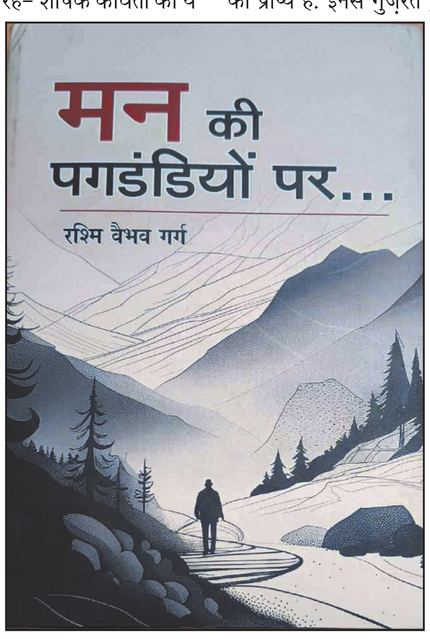

एक जगह रश्मि लिखती हैं- लो कट गए अब/ तुम्हारी उदासियों/ और मेरी खताओं के महीने/ आँखों में समाया सावन/ कब तक बरसता रहेगा अकेला ही. या तुम मुस्कुरा देना जाते हुए/ शेष अलिखित पंक्तियाँ/ मैं पढ़ लूँगी तुम्हारे चेहरे की रौनक से. यह स्त्री मन का वह उद्दाम-उदात्त प्रेम है, जो सदियों से कितनी बार, कितनी तरह से लिखे जाने के बाद भी हमेशा अव्यक्त ही रह जाता है. रश्मि की कविताएँ उस अव्यक्त प्रेम को अलग-अलग कोणों से डिकोड करती हैं. स्त्री मन की गहराई में उठते भावों के उतार-चढ़ाव इस संग्रह का प्राप्य हैं. इनसे गुज़रते हुए प्रेम की अनुभूतियों को हम जीते हैं अपनी-अपनी तरह से, अपने-अपने पाठ में. अपने लिखे से पाठक का इस तरह जुड़ना, एक कवि के लिए इससे बड़ा तोष क्या हो सकता है.

इन कविताओं की भाषा बेहद सरल-सहज होने के बाद भी अपनी तरफ़ ध्यान खींचती हैं. कहने का ढंग भी साधारण हैं. लेकिन रश्मि ने बहुत कम वक्फे में ख़ुद अपना मुहावरा गढ़ा है. सच तो यह है कि %सरल लिखना सबसे कठिन है% और जो सरल लिखता-गुनता है, उससे पाठक ज़्यादा तादात्म्य बना पाता है. इस नाते ये संवेदनशील कविताएँ आम पाठकों तक आसानी से पहुँचकर झकझोरती है. ज़्यादातर कविताएँ प्रेम और प्रकृति से जुड़ती हैं तो कुछ जीवन के झंझावातों से निकली हैं. हमें इनमें कवि मन की स्पष्ट छाप मिलती है.

कविता अर्थ के खिलाफ़ एक शाश्वत संघर्ष है. दो अति हैं =कविता सारे अर्थों को समेट लेती है, यह सारे अर्थों का अर्थ है या फिर कविता भाषा को किसी भी तरह का अर्थ ढोने से वंचित करती है... कोई भी तब तक कवि नहीं है, जब तक उसे अपने भीतर भाषा को नष्ट करने और एक दूसरी भाषा को सिरजने के आकर्षण ने लुभाया नहीं है. जब तक उसने अर्थशून्यता के आकर्षण को और अभिव्यक्त न किए जा सकने वाले अर्थ के भयावह अनुभव को जिया नहीं है. चीख और खामोशी के बीच, सारे अर्थों को समेट लेने वाले अर्थ और अर्थ की अनुपस्थिति के बीच कविता उठती है. लातिनी अमरीकी कवि आक्टेवियो पाज़ की यह टिप्पणी बताती है कि एक अच्छी कविता इसी तरह पाठक के मन में अपनी छाप छोड़ती है. इनमें बहुत-सा कहने से छूटा हुआ है और यही अव्यक्त या छुटा हुआ हमारी अंतस की चेतना को झकझोरता है. साहित्य का असल मक़सद शायद इसी स्पेस को पाठक के मन में रोप देने का है. ताकि दृष्टि और समझ दोनों ही विकसित हो. इस मायने में ये कविताएँ बड़ा काम करती हैं. ख़ुद रश्मि के शब्दों में-अनेकों युद्ध/ चलते हैं मन के भीतर/ आसान नहीं यूँ / उन युद्धों को/ शब्दों में/ पिरो देना. यह एक कठिन और दुष्कर काम है लेकिन रश्मि जैसे नए कवि इस काम को किसी चुनौती की तरह अपने जीवन का कुछ वक़्त चुराकर किसी मिशन की तरह जुटे हैं. उनका यह हौंसला, उम्मीद और संकल्प बरकरार रहे, दुनिया को और बेहतर तथा सुंदर बनाने का रास्ता ऐसी ही कविताओं की पगडंडियों से होकर जाता है.

मन की पगडंडियों पर (कविता संग्रह)
रश्मि वैभव गर्ग
कीमत- 495/-
ज्ञान गीता प्रकाशन, दिल्ली

क्लास by बड़े भाई

दिवाली पर दिए की लौ से लें यह प्रेरक संदेश

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, आज दिवाली विशेष एक किस्सा सुनाता हूँ. इससे मिलने वाला संदेश आपको जीवन भर साथ देगा.

एक बार दिए की लौ और जंगल में लगी आग की अचानक मुलाक़ात हो गई. जंगल को झुलसा रही आग ने जब छोटे से दिए में टिमटिमाती लौ को देखा तो लौ पर हँसते हुए बोली - देखो, तुम मेरी बहन हो लेकिन मेरा दबदबा देखो, लोग मुझसे कितना डरते हैं उनकी मेरे आसपास भी फटकने की हिम्मत नहीं है और एक तुम हो कि तुमसे किसी को डर नहीं.

यह सुनकर दिए की लौ ने उसकी उठती लपटों को निहारा और फिर मुस्कुराकर उसने बड़ा गहरा उत्तर दिया. उस टिमटिमाती लौ ने मुस्कुराते हुए कहा - हाँ,सच कह रही हो बहन, तुमसे लोग डरते तो हैं पर डरते तो लोग मुझसे भी हैं, बस इस डर का कारण अलग अलग है.

तुमसे लोग डरते हैं कि तुमसे कहीं वो जल न जाएं लेकिन मुझसे लोग डरते हैं कि कहीं मैं बुझ न जाऊँ.

बस, इतना अंतर है और यह अंतर इसलिए है क्योंकि तुम लपटें देती हो लेकिन मैं रोशनी.

तुम जलाती हो लेकिन मैं जगमगाती हूँ. तुम रास्ते मिटाती हो लेकिन मैं रास्ता दिखाती हूँ. उनका साथ निभाती हूँ. बस इतना अंतर है .

छोटे भाई, इस सहज किस्से का भाव आप समझ गए होंगे. आग दोनों ही थी पर इतने अंतर के साथ. कहना यह है कि जब हम अपनी क्षमता में अहंकार नहीं, नियंत्रण और विनम्रता रखते हैं तो दिया होते हैं.

इस दिवाली दिए से यह संदेश हम और आप आज लेकर ही निकलें कि अपनी क्षमता का सार्थक उपयोग करें. विनम्रता भरें .सहजता भरें. अंधेरा नहीं, प्रकाश फैलाएं.यह कीर्ति बढ़ाता है, शांति बढ़ाता है.

दिवाली की अग्रिम शुभकामनाएं..

किसी दिन

श्रीति राशिनकर

किसी दिन तुम आना थोडा समय
रखकर
बैठना मेरे पास
यादो की गठरी लिये
खोल लेना धीरे धीरे
स्मृतियों की परतें
निकालना उन्हें अपने कोमल हाथों से
याद करना सिर्फ ऐसी यादों को
जो दे सके हमें खुशी
और हां दुख भरी परतें
खोलना ही मत तुम !
खुशीयों की परतों को
वर्तमान के इत्र के साथ
फिर साझा करेंगे हम
दौड़ पड़ेगा
बचपन हमारा इनके साथ
और वह सूखा गुलाब
फिर महक उठेगा किताब से
जो दिया था कभी तुमने ,
वह मुस्कान भी तो है
जब हमने इकठ्ठा की थी
हथेली पर बारिश की बूंदे ,
इस गठरी से
तुम उस चश्में को
निकालना मत भूलना
जो पचास पार होते होते तुम्हें
लगा था !
इन महकती यादों को
फिर करेंगे तरोताजा
बांध लेंगे उस गठरी को
फिर से समय की उड़ान के साथ
इन परतों में फिर जोड़ेंगे
कुछ क्षण सुख के !

लघुकथाएं

रिश्ता

संदीप तोमर

दिनेश एक अत्यंत संवेदनशील युवक था. उसकी सजगता, सादगी और सहानुभूति ने उसे दिव्या के परिवार का इतना अभिन्न हिस्सा बना दिया कि वह अब परिवार के अहम फैसलों में भी उसकी उपस्थिति होने लगी थी.

दिव्या के भाई की असमय मृत्यु और पिता की शराब की आदत ने उस घर को भीतर से हिला दिया था. ऐसे में दिनेश ही उनके दु:ख-दर्द का साथी बना था. वह न केवल मानसिक संबल बना, बल्कि दिव्या की पढ़ाई तक का खर्च अपनी जेब खर्च से उठाने लगा. दिव्या की माँ को उसमें बेटे की झलक दिखती थी. दिव्या ने अब उसे रक्षाबंधन पर राखी बाँधनी शुरू कर दी थी.

दिनेश के लिए यह रिश्ता प्रेम से कहीं ज़्यादा करुणा और उत्तरदायित्व से बँधा था. लेकिन भावनाओं के तलछट में कुछ ऐसा भी था जिसे शब्द नहीं दिए गए थे.

घर की आर्थिक स्थिति दिन-ब-दिन बिगड़ती चली जा रही थी, जब हालात अधिक बिगडे तो दिव्या ने थरथराती आवाज़ में कहा, दिनेश भैया अब हमारा क्या होगा? पापा की हालत देखिए, मम्मी कैसे और कितना कमाए, खर्चा चलाना तक मुश्किल हो गया है.

दिनेश ने धीर स्वर में उत्तर दिया, दिव्या, मुझे एक मल्टीनेशनल कंपनी में नौकरी मिल गई है एचआर डिपार्टमेंट में.

ये तो बहुत खुशी की बात है लेकिन आपकी नौकरी से हमारे दिन कैसे बदलेंगे? - दिव्या की आवाज़ में हल्की कड़वाहट थी.

कुछ क्षण दोनों के बीच मौन रहा. फिर, दिनेश ने फलों की प्लेट में रखे चाकू को उठाया, उंगली पर कट का निशान बनाया, अपने रक्त-सने हाथ को दिव्या के माथे से माँग तक फिराते हुए बोला — हवा, आकाश, धरती, जल और सभी दिशाओं को साक्षी मान मैं तुम्हें अपनी पत्नी स्वीकार करता हूँ. आज से तुम्हारी सारी जि़म्मेदारी मेरी. जब कहोगी, सबके सामने यह रिश्ता स्वीकार कर लूँगा.

दिव्या स्तब्ध. उसने कहा- भैया! ये क्या किया आपने?

वह पीछे हट गई, जैसे कोई दीवार अचानक दरक गई हो. ये रिश्ता अब 'भैया' का नहीं, जीवनसाथी का है, दिव्या.

नहीं दिनेश, उसकी आवाज़ में दृढ़ता लौट आई थी, रिश्तों के नाम बदल देने से उनके अर्थ नहीं बदल जाते. राखी के धागे को मिटाकर कोई नया रिश्ता नहीं गढ़ा जा सकता. यह यह गुनाह है. और इस गुनाह का कोई प्रायश्चित नहीं हो सकता. लेकिन मैंने तो

कौन सा रिश्ता सच्चा है, दिनेश? वो जिसमें तुमने मुझे बहन माना या ये, जिसे तुम अब थोपना चाहते हो?

दिनेश मौन रहा. उसकी नज़रों में उलझन थी, पश्चाताप था या शायद कोई और भावना, जिसे वह भी ठीक-ठीक नहीं पहचान सका.

दिव्या ने आखिरी बार उसकी ओर देखा और धीरे से कमरे से बाहर निकल गई.

स्मृतियों में जीते हुए

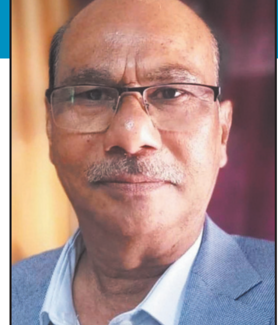

पवन शर्मा

राघव आज भी वही कुर्सी खींचकर आँगन के कोने में बैठ गये. सूरज की हल्की धूप उसके सफ़ेद होते बालों पर फिसल रही थी. आँखें आधी बंद हुईं, पर मन कहीं और जा चुका था—वहीं, कई बरस पीछे.

उन्हें साफ़ याद था—राधिका की खिलखिलाहट. आँगन में तुलसी के पास खड़ी होकर वह घंटों उनसे बातें करती थी, राघव, ये पौधा देखो, कितना बढ़ गया है.

हाँ. वह मुस्कुराकर कहता, तुम्हारी तरह—हर दिन और सुंदर. राधिका हँस देती, बस-बस, इतनी बातें मत बनाओ. चाय ठंडी हो जाएगी.

कभी तंज, कभी मासूम जिद, और कभी ऐसी चुप्पी... जो शब्दों से कहीं गहरी होती थी.

आज घर सूना है. बच्चे शहरों में अपने-अपने जीवन में खो गए. यहाँ केवल दीवारों पर जड़ी हुई उनकी तस्वीरें हैं — युवावस्था की झलक, बच्चों का बचपन, और वह एक तस्वीर, जिसमें राधिका हौले-से मुस्कुराती हुई खड़ी है.

राघव दिन भर इन्हीं तस्वीरों से बातें करते. चाय का प्याला उठाकर धीरे से बुदबुदाये, राधिका, याद है तुम्हें—तुम्हें चाय में हमेशा कम चीनी चाहिए होती थी...

उनके कानों में जैसे राधिका की आवाज़ गूँजी, और तुम हमेशा ज़्यादा डाल देते थे. कहते थे, 'जिंदगी मीठी रहनी चाहिए'.

राघव हल्की हँसी हँस पड़े. उनकी आँखें भीग गईं.

कभी वह अकेले बैठा कह उठते, राधिका, लोग कहते हैं कि मैं अतीत में अटका हुआ हूँ.

और जैसे हवा के झोंके में उसकी फुसफुसाहट सुनाई देती, तो क्या हुआ, राघव? अतीत ही तो तुम्हारा सबसे सच्चा वर्तमान है.

शाम ढलने लगी. राघव बरामदे में टहलते हुए हवा से धीमे स्वर में कह बैठे, मैं अकेला नहीं हूँ, राधिका. तुम अब भी यहीं हो... मेरी हर धड़कन में.

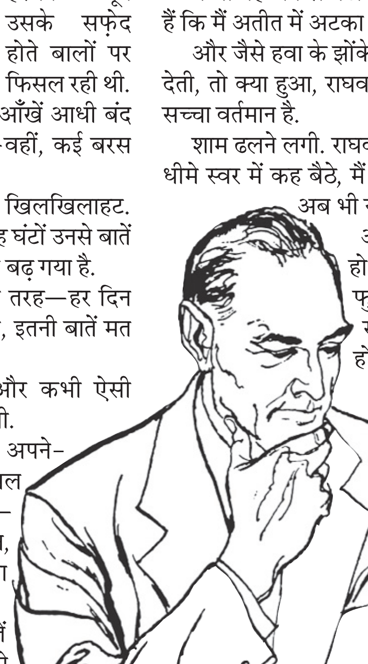

और जैसे राधिका पास खड़ी हो, उसकी आँखों में देखती हुई फुसफुसाई, मैंने कहा था न, राघव... हम कभी अलग नहीं होंगे. राघव मुस्कुरा उठे.

उनकी दुनिया, उनका वर्तमान, और उनका भविष्य—सब राधिका की स्मृतियों में ही बसा था. वे जानते थे, स्मृतियों में जीना शायद जीना नहीं कहलाता, पर उनके लिए यही सबसे गहरा जीवन था.

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी